ओला

'ओला' के शाब्दिक अर्थ हैं – ओट, आसरा, आधार, शरण या टेक ! परन्तु आध्यात्मिक स्तर पर इसमें गहरा भेद है ।

प्रत्येक जीव को दुनिया में विचरण करने के लिए किसी का सहारा लेना पड़ता है । बच्चा पैदा होते ही अपनी **'माँ'** पर निर्भर होता है तथा फिर सारी जिन्दगी भी, वह अपने से बड़ी हस्ती की ओट लेकर अपना जीवन व्यतीत करता है । संसार में रहते हुए हमें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है । जब हम स्वयं उनका हल नहीं निकाल सकते, तब हमें किसी का आसरा लेना पड़ता है । इस प्रकार जीवन के हर पड़ाव पर हम किसी न किसी पर निर्भर रहते हैं ।

मायकी जीवन के अतिरिक्त एक अन्य जीवन है जो इससे श्रेष्ठ है अर्थात् **'परमार्थ जीवन' !** वास्तव में **'परमार्थ जीवन' के बिना** हमारा कोई जीवन ही नहीं, इस के बिना हम इन्सान होते हुए भी पशु समान हैं ।

अकाल पुरुष की अपनी मौज में रचित इस इलाही सृष्टि में दो भिन्न-भिन्न **मंडल** हैं –

1. **आत्मिक मंडल :-** जिस में **इलाही प्रकाश,** अर्थात् –

सदा खैर
सदा सुख
सदा खुशी
प्रीत
प्रेम
रस
चाव
नाम

शान्ति

ठंडक

का प्रवेश तथा प्रकटाव है ।

2. **'मायकी मंडल'** अथवा अहम्ग्रस्त चतुराईयों का मंडल – जिसमें तुच्छ मायकी रुचियाँ, जैसे –

काम

क्रोध

लोभ

मोह

अहंकार

स्वार्थ

ईर्ष्या

नफरत

जलन

चिंता

तृष्णा

आदि की अग्नि प्रवृत्त है । इस **'आतिश दुनिया'** में खचित हुए सभी लोग जलते-भुनते, हाय-हाय करते, त्राहि-त्राहि करते,'किझु न बुझै किछु न सुझै दुनीआ गुझी भाहि' वाला जीवन व्यतीत कर रहे हैं ।

बाबा देखै धिआनु धरि जलती सभि पृथिवी दिसि आई ।(वा.भ.गु.. 1@24)

जैसी अगनि उदर महि तैसी बाहरि माया ॥
माया अगनि सभ इको जेही करतै खेलु रचाया ॥ (पृ. 921)

मनमुख माया मोहि विआपे इहु मनु त्रिसना जलत तिखईआ ॥(पृ. 834)

गुरबाणी अनुसार इस **'गुझी-भाहि'** अथवा **'मायकी अग्नि'** से बचने के लिए मन की बाहरमुखी **'सुरति-वृत्ति'** को **'मायकी-मंडल' से मोड़ कर 'आत्म-मंडल'** के –

शीतल

शान्त

सुखदायी

विस्मादमयी
ठंडे
खुनक-नाम

की ओर लगाना ही –

'भजि पए हरि सरणाई है' !
'चरण शरण जाना है' !!
'गहु हरि नाम का ओला है' !!!

यदि एक ओर आग जला दें तथा दूसरी ओर बर्फ रख दें, तो ज्यों-ज्यों हम आग के नज़दीक जायेंगे, त्यों-त्यों गर्मी बढ़ती जाएगी तथा ठंडक कम होती जाएगी। इसके विपरीत यदि आग की ओर पीठ करके बर्फ की ओर मुड़ेंगे तो ठंडक बढ़ती जाएगी तथा सेक कम होता जाएगा।

यही नियम हमारी मानसिक अवस्था पर भी हू-ब-हू लागू होता है।

ज्यों-ज्यों **'ठांढा हरि नाउ'** की ओर पीठ करके, अपनी इलाही माता – **'अकाल पुरुष'** का ओला छोड़कर अथवा उसको **भूल कर या विमुख होकर** हमारी सुरति-वृत्ति 'आतिश दुनिया' की ओर मुड़ती जाती है – त्यों-त्यों 'हरि-नामु' की आत्मिक शीतलता कम होती जाती है तथा उसी अनुपात में **'नाम'** की इलाही बख्शिशों से वंचित होते जाते हैं।

कुछ समय उपरांत हम माया की दलदल में इतना धँस जाते हैं कि हमें इस **'अग्नि-शोक-सागर'** से बाहर किसी और –

उत्तम
श्रेष्ठ
सुनहरे
सुखदायी
कल्याणकारी

'आत्म-जीवन' का –

ध्यान ही नहीं रहता !
ख्याल ही नहीं आता !
विश्वास ही नहीं आता !
श्रद्धा ही नहीं उत्पन्न होती !!!
आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती !!!

जन्म-जन्मान्तरों से हमारा मन इस **'मानसिक-अग्नि'** में जलता-भुनता **'ढीठ'** तथा **'कठोर'** हो चुका है । यही कारण है कि इस में से निकलने का हमें कभी ख्याल ही नहीं आया, यत्न तो क्या करना था ! इस प्रकार हमारी यह स्वयं-लगायी **गुप्त मानसिक 'अग्नि'** अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती है जो किसी मामूली सी बाहरी उक्साहट से भड़क उठती है तथा आग की लपटें बनकर आस-पास सब कुछ जला देती है ।

जब कभी यह मानसिक-अग्नि तीव्र तथा असहनीय हो जाती है तब इसका दोष हम **'दूसरों'** पर या **'भगवान'** पर थोप कर अपना मन हल्का कर लेते हैं । इसके साथ-ही-साथ हम अपनी सयानप तथा चतुराई द्वारा दुख-क्लेश से बचने का प्रयत्न करते हैं । जब सफलता नहीं मिलती, तब अपने से बड़े अफसरों, मंत्रियों, संबन्धियों की **'ओट'** या **'आसरा'** ढूंढते हैं । जब किसी प्रकार भी सफलता नहीं मिलती तब साधु, संतों, पीर-फकीरों, देवी-देवताओं की **'शरण'** में जाते हैं । यदि किसी एक साध-संत या पीर-फकीर द्वारा कार्य सम्पन्न न हो, तो दूसरे की **'टेक'** ढूंढते हैं, जबकि गुरबाणी हमें सावधान करती है –

मानुख की टेक ब्रिथी सभ जानु ।। (पृ. 281)

इतना ही बस नहीं, जीव अपने दुख-क्लेश से बचने के लिए या मायकी तृष्णा की पूर्ति के लिए दर-दर भटकता है, कई प्रकार के **'नशे'** या तुच्छ **'मनोरंजन के साधनों'** द्वारा अपने आप को भुलाने की कोशिश करता है । यह सारे 'साधन' मानसिक-समस्याओं को भुलाने या उनसे बचने के **अस्थाई-उपाय हैं,** जिनके द्वारा कुछ समय के लिए नाम मात्र सी खुशी या सन्तुष्टि तो मिलती है, परन्तु मन की **अन्दरूनी गुप्त लपटें नहीं बुझती,** न ही हृदय में ठंड पड़ती है ।

जहाँ आग है, वहाँ शीतलता नहीं हो सकती !
जहाँ शीतलता है, वहाँ गर्मी का अभाव है !!
आग की लपटों में शीतलता को खोजना हास्यप्रद मूर्खता है !!!

परन्तु हम बड़े सयाने, विद्वान तथा अकल-लतीफ कहलवाते हुए भी अहम् के भ्रम-भुलाव के अधीन **'तृष्णाओं की पूर्ति'** में से मन का सुख, शान्ति तथा ठंड ढूँढते हैं । हमारी इस हालत के विषय में भाई गुरदास जी लिखते हैं –

आसा मनसा मोहणी तामसु तिसना सांति न आवै ।
बलदी अंदरि तेल पाइ किउ मनु मूरखु अगि बुझावै । (वा.भा.गु. 15@9)

इस गुप्त मानसिक अग्नि से छुटकारा पाने के लिए हम धार्मिक-स्थानों की ओर दौड़ते हैं, परन्तु वहाँ भी हम अपनी आन्तरिक अग्नि **साथ ले जाते हैं ।**

धर्म-स्थानों को भी हमने ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध, लालच, बेईमानी तथा 'मज़हबी तअस्सुब' की आग लगायी हुई है ।

माया डर डरपत हारि गुरदुआरे जावै
तहा जउ **माया बिआपै** कहा ठहराईऐ । (क. भा. गु. 544)

जीवन के हर क्षेत्र में इस आग की लपटें भभक रही हैं, जिन में जलता-भुनता संसार पुकार रहा है –

हाय ! शीतलता कहाँ ?

गुरू साहिब ने इस विश्व-हृदय की पुकार सुनकर जनता को गुरबाणी द्वारा यूँ आत्मिक जीवन-दिशा प्रदान की है –

मन मेरे गहु हरि नाम का ओला ॥
तुझै न लागै ताता झोला ॥ (पृ. 179)

ताती वाउ न लगई पारब्रहम सरणाई ॥ (पृ. 819)

सीतल सांति सूख हरि सरणी जलती अगनि निवारे ॥ (पृ. 210)

एहु जगु जलता देखि कै भजि पए हरि सरणाई राम ॥ (पृ. 571)

जब छोटे बच्चे को चोट लगती है या बिल्ली-कुत्ते पीछे पड़ जाते हैं तब वह 'मम्मी मम्मी' पुकारता है तथा दौड़ कर 'माँ' के पास आ जाता है क्योंकि उसे दृढ़ **निश्चय** होता है कि उसकी **'माँ'** उसे आफत से अवश्य बचा लेगी । माँ की **गोद** अथवा **'ओला'** ही उसके लिए सबसे सुरक्षित स्थान है, जहाँ कोई दुख-क्लेश या आफत नहीं पहुँच सकती ।

पाइओ बाल बुधि सुखु रे ॥ (पृ. 214)

इस तरह के **पूर्ण निश्चय या श्रद्धा-भावना** से सतिगुरू को पुकारना या **'सिमरन'** करना ही **सतिगुरू की चरण-शरण जाना है, उसकी ओट लेनी है।** अकाल पुरुष के **'हुक्म'** की सहज-चाल में अपनी नन्ही सी मन-मर्जी को विलीन करना ही **उसका 'ओला' लेना है** । मन की चतुराईयों, उक्तियों-युक्तियों, भटकन, अहम्, मैं-मेरी को माया से मोड़ कर सतिगुरू के **'हुकुम'** के परायण या **आत्म-परायण** करना ही **'भजि पए हरि सरणाई' है** ।

जब जंगल में आग लग जाये तो हिरण आदि जंगली जीव नदी में कूद कर अपने आप को आग की तपिश से बचा लेते हैं । इसी प्रकार **गुरमुख-जन** अथवा

हरिजन प्यारे अपने कूड़ अहम् अथवा मायकी –

चतुराईयों
उक्तियों-युक्तियों
भटकन
ज्ञान
फिलोस्फियों
क्यों ? क्या ? कैसे ?

वाली बुद्धि के चिंता-फिकर-डर आदि छोड़ कर, नन्हें बच्चे (baby) की भाँति, भोले-भाव, सतिगुरू की प्रेम-स्वैपना की ममतामयी गोद का **ओला** लेते हैं, साध-संगति में विचरण करते **हुए अटूट 'सिमरन'** द्वारा **'शबद-सुरति'** में लिव लगाते हैं, तब सतिगुरू की समस्त बख्शिशों के पात्र बनते हैं । सतिगुरू उस गुरमुख-रूह पर यूँ प्यार से कृपा करता है –

हरि जी माता हरि जी पिता हरि जीउ प्रतिपालक ॥
हरि जी मेरी सार करे हम हरि के बालक ॥
सहजे सहजि खिलाइदा नही करदा आलक ॥
अउगणु को न चितारदा गल सेती लाइक ॥
मुहि मंगां सोई देवदा हरि पिता सुखदाइक ॥
गिआनु रासि नामु धनु सउपिओनु इसु सउदे लाइक ॥ (पृ. 1101-02)

खेलि खिलाइ लाड लाडावै सदा सदा अनदाई ॥
प्रतिपालै बारिक की निआई जैसे मात पिताई ॥ (पृ. 1213)

परन्तु कोई विरले, बख्शे हुए **'गुरमुख-जन'** ही इस **'आतिश-दुनिया'** में हरि नाम का **'ओला'** लेकर इलाही प्रीत की शीतलता अनुभव करते हैं –

दावा अगनि बहुतु त्रिण जाले
कोई हरिआ बूटु रहिओ री ॥ (पृ. 384)

गुरबाणी में बार-बार हमें ऐसे बख्शे हुए, आत्मिक-शीतलता में विचरण कर रहे गुरमुख-जनों की संगति करने का ताकीदी हुकुम दृढ़ करवाया गया है –

मन मेरे तिन की **ओट लेहि** ॥
मनु तनु अपना तिन जन देहि ॥
जिनि जनि अपना प्रभू पछाता ॥
सो जनु सरब थोक का दाता ॥

तिस की सरनि सरब सुख पावहि ॥
तिस कै दरसि सभ पाप मिटावहि ॥
अवर सिआनप सगली छाडु ॥
तिसु जन की तू सेवा लागु ॥ (पृ. 286)

इन्सान की अकाल-पुरुष पर ओट तथा अकाल-पुरुष का अपने 'अंश' जीव के लिए –

'सद-बरवशिंद'
'सदा-मिहरवाना'
'अउगुण को न चितारे'
'प्रेम सहित गल लावै'

वाले इलाही बिरद को दर्शाने के लिए **माँ-बच्चे की प्रीत** एक सर्वोत्तम उदाहरण है ।

बच्चा जब माँ के 'पेट' में होता है, तब उसकी लिव कर्ता के साथ जुड़ी होने के कारण उसके विकसित तथा प्रफुल्लित होने के लिए सारा प्रबन्ध **'इलाही माता'** अकाल-पुरुष द्वारा सहज-स्वभाव ही होता रहता है । नौ मास माँ के पेट की 'जठर-अग्नि' में अकाल-पुरुष के अटूट **सिमरन का 'ओला'** ही उसकी रक्षा करता है –

मात गरभ महि आपन सिमरनु दे तह तुम राखनहारे ॥ (पृ. 613)

जन्म के बाद भी नन्हें बच्चे (baby) को अपने आप की सूझ नहीं होती । उसकी अपनी **'माँ'** पर भोले-भाव **'टेक'** तथा **श्रद्धा-की भावना** होती है, इस लिए 'दो तरफ' आकर्षण के अनुसार **माँ** भी स्वयं को न्यौछावर करके **'नव-जात शिशु'** की सम्भाल, पालन-पोषण तथा जीवन की सभी आवश्यकताओं की चिंता तथा प्रबन्ध करती है । बच्चे को अपने लिए कोई सयानप, चतुराई, प्रबन्ध, फिकर, चिंता या दौड़-धूप करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि उस को **दृढ़ विश्वास** होता है कि उसकी कोई अपनी –

प्यार करने वाली
रक्षा करने वाली
संभालने वाली
खेल खिलाने वाली

लाड लडाने वाली
फिकर करने वाली
शुभ-चिंतक

हस्ती है, जो उसकी प्यार-भावना से **परवरिश** करती है । उसके भोले-भाव निश्चय अनुसार **'माँ'** ही उसका परमेश्वर, गुरू तथा दाता है । इस लिए बच्चा –

बे-फिकर होकर
आशा-मनसा रहित
निष्क्रिय होकर
निश्चिन्त होकर

अपने माँ-बाप की **पूर्ण ओट तथा छत्रछाया** अधीन खेलता कूदता, चाव में, खुशी में, आनंद में, **'रंगि हसहि रंगि रोवहि चुप भी करि जाहि'** अनुसार **कुदरती सहज-जीवन** व्यतीत करता है ।

उधर घर के काम-काज में व्यस्त **'माँ' अपने बच्चे में ध्यान लगाये रखती है ।** चूल्हे में आग जलाती, चक्की पीसती, पसीने की 'बदबू' से लथ-पथ माँ की गोदी में बच्चा रेंगता-रेंगता आ जाता है और माँ के प्यार की अमृत-घूँट भर के सब कुछ भूल जाता है ।

यदि बचा खेलता-खेलता किसी गंदे स्थान पर या कीचड़-गारे में गिर जाए, गंदा हो जाये, उसे चोट लग जाये, तो माँ चाहे पूरी तरह से सज धज कर, हार श्रृंगार करके बैठी हो, कीमती से कीमती कपड़े पहने हों – परन्तु अपने 'लाल', जिगर के टुकड़े की आवाज़ सुनकर उसी समय दौड़ पड़ती है, रोते-चिल्लाते, कीचड़ में लथ-पथ हुए बच्चे को अपनी छाती से लगा लेती है, प्यार से चूम-चूम कर उसे आशीर्वाद देती, लोरी सुनाती, थप-थपा कर सुलाती है । माँ की इस सेवा-भावना में न कोई स्वार्थ है, न ही **मुक्ति की इच्छा !** अपितु माँ तो **बच्चे के प्रेम-आकर्षण** में स्वयं को न्यौछावर करके **सृजनहार के 'हुकुम' के अनुसार 'सेवा' करती है ।** यह माँ-बच्चे का प्यार एक अलौकिक इलाही चमत्कार है !

परन्तु यह **माँ-प्यार** या **'मोह'** की छत्रछाया बच्चे पर तब तक काम करती है, जब तक बच्चा माँ के ख्यालों, इच्छाओं तथा प्यार-भावना के परायण या सुर में (in tune) रहता है, उसकी **'ओट'** या **'ओला'** लेता है । जब बच्चा सयाना, **मनमाना** तथा माँ की **प्यार-भावना** से **'बे-सुर' होकर** अपनी मन मर्जी करता है, तब वह माँ की ममता तथा शुभ-इच्छाओं से वंचित होता जाता है तथा अपने

कर्मों का फल भोगता, ठोकरें खाता है – जिसके लिए वह स्वयं जिम्मेदार होता है।

इस का कारण यह है कि जब बच्चा मनमाना होकर माँ-प्यार से दूर हो जाता है या उस का **'ओला'** छोड़ देता है, तब उसका अपने 'माँ-प्यार' रूपी **'स्रोत'** से संबन्ध टूट जाता है तथा वह रूखा-सूखा जीवन व्यतीत करता हुआ अपने कर्मों का फल स्वयं भोगता है । फिर भी **'माँ'** के हृदय में 'माँ-प्यार' के शुभ-ख्याल तथा आशीर्वाद उसी प्रकार कायम रहते हैं तथा जब भी बच्चा अपनी चतुराईयों व 'मनमानेपन' से दुखी होकर **माँ की शरण लेता है,** तब **माँ** उसको पुनः गले लगाती है तथा अपनी ममतामयी प्यार व शुभ आशीषें देती है ।

जे अति क्रोप करे करि धाइआ ।।
ता भी चीति न राखसि माइआ ।। (पृ. 478)

इसी प्रकार जब हम अहम् के भ्रम-भुलाव के अधीन अकाल पुरुष का **आसरा या 'टेक'** छोड़ कर, **'द्वैत-भाव'** में आ कर, पाँच वासनाओं के वश में आकर अपनी **'इलाही-माता'** के प्यार से मुँह मोड़ते हैं, या उस का **'ओला'** छोड़ कर माया के लुभायमान चमत्कारों में गलतान हो जाते हैं, तब उसके समस्त दैवीय **गुणों, बरकतों तथा बख्शिशों** से वंचित हो जाते हैं ।

बिजली के करंट से लाभ उठाने के लिए तारों का मेल ज़रूरी है । इसी प्रकार अकाल-पुरुष की बेअंत, अपार, सुखदायी तथा कल्याणकारी **'बख्शिशों'** के पात्र बनने के लिए, हमारे **मन की वृत्तियों की तार,** हमारी अन्तर-आत्मा में, **'हरिनाम'** से जुड़ी होनी अनिवार्य है ।

इस उदाहरण से स्पष्ट है कि हमारी **श्रदा-भावना में विघ्न पड़ने से** ही हम **'ईश्वरीय प्यार'** की तार से टूट जाते हैं ।

परमेसर ते भुलिआं विआपनि सभे रोग ।।
वेमुख होए राम ते लगनि जनम विजोग ।। (पृ. 135)

हमारे अहम् के भ्रम-भुलाव में से उत्पन्न सयानप, चतुराई, भटकन तथा हमारे किन्तु-परन्तु ही हमें 'इलाही-माता' – परमेश्वर की स्नेहमयी गोद से वंचित रखते हैं । ज्यों-ज्यों हम अकाल-पुरुष की **'ओट'** छोड़कर श्रद्धा-हीन, भावना-हीन, प्यार-हीन होते जाते हैं, त्यों-त्यों हमारी प्रीत-डोरी का आकर्षण कमजोर होता जाता है तथा इससे प्राप्त होने वाली इलाही-बख्शिशें तथा गुण कम होते जाते हैं ।

जिस प्रकार संध्या होने पर प्रकाश कम होता जाता है तथा अन्धकार बढ़ता जाता है, इसी प्रकार जब इन्सान 'नाम' के **आत्म-प्रकाश** से दूर होता जाता है तब मायकी तृष्णाओं तथा भ्रम-भुलाव का **'अंधकार'** बढ़ता जाता है ।

लिव छुड़की लगी त्रिसना माया अमरु वरताइआ ॥ (पृ. 921)

फिर भी जब कभी सत्संग करते हुए जीव की आत्मा किसी प्रकार **जागृत हो उठे** तथा वह ठगिनी माया के जाल में से निकलने के लिए परमात्मा की **शरण में आये,** तब अपने बिरद का पालन करती हुई **'इलाही माता'** उस पर मेहरबान होती है तथा अपने दर-घर से दैवीय बरिव्शशों द्वारा उसे निहाल कर देती है ।

जो **सरणि आवै** तिसु कंठि लावै
इहु बिरदु सुआमी संदा ॥ (पृ. 544)

जो तेरी **सरणाई** हरि जीउ तिन की करहि प्रतिपाल ॥ (पृ. 1333-34)

हमारे इलाही माता-पिता को पता था कि इन्सान अपने अहम् के अधीन होकर तीक्ष्ण-बुद्धि की उक्तियों-युक्तियों द्वारा अपने **'दाता'** परमेश्वर को **भूल सकता है ।** इसलिए आदि से ही परमेश्वर ने हम 'विमुरवों' को – **'भूल'** में से निकाल कर **'याद'** में लाने के लिए या 'अकाल-पुरुष' के **'ओले'** की स्नेहमयी तथा सुरवदायी छत्र-छाया अधीन पुनः लाने के लिए, अपने दर-घर से गुरू, पीर, फकीर, साधु, संत, महापुरुष, गुरमुरव-प्यारे आवश्यकता अनुसार संसार में भेजे, जिन्होनें उस समय के हालात अनुसार जीवों को परमार्थ की ओर लगाने के लिए आत्मिक उपदेश दिये।

साध पठाए आपि हरि हम तुम ते नाही दूरि ॥ (पृ. 929)

साध रूप अपना तनु धारिआ ॥
महा अगनि ते आपि उबारिआ ॥ (पृ. 1005)

यह सब कुछ प्रेम-स्वरूप अकाल-पुरुष का अपने **'अंश'**, जीवों के प्रति अत्यन्त प्यार-भावना का –

बिरद
कृपा
बरिव्शश
गुरप्रसादि

प्रकटाव
प्रतीक है !

दुनियावी माँ के हृदय में अपनी कोख से उत्पन्न बच्चे के लिए अथाह प्यार होता है तथा वह अपने बच्चे के बिछुड़ने को सह नहीं सकती तथा अपने **'खोये हुए बच्चे'** की खबर लेती रहती है – उसे पुनः अपने गले लगा कर, अपनी गोद का ममतामयी प्यार तथा सुख देने की तीव्र इच्छा व आकांक्षा बनाए रखती है। वह अपने बच्चे की ओर प्रेम-संदेश भेज कर उसको पुनः अपनी ओर प्रेरित तथा आकर्षित करती रहती है।

इसी प्रकार हमारी **'इलाही माता' परमेश्वर** भी अपने अंश – बच्चों के वियोग को सह नहीं सकती। इसलिए सृष्टि के कण कण में उस ने **'जीवन तत्' 'आत्मा'** में अपने प्यार की **तीव्र आकांक्षा या आकर्षण का अंश प्रविष्ट कर दिया है,** ताकि जीव का अपने कर्ता की ओर, अनजाने, सहज-स्वभाव **'आकर्षण'** बना रहे। ज्यों-ज्यों जीव के **'अहम्'** का आवरण पतला होता जाता है, उसकी सुरति-वृत्ति **'आत्म-परायण'** होती जाती है तथा अपने केन्द्र या स्त्रोत की ओर अन्तर-आत्मा में **'आकर्षण'** बढ़ता जाता है।

इस आत्मिक-प्यार का **आकर्षण, डोरी या आकांक्षा** दो-तरफी है। एक ओर अकाल पुरुष स्वयं अपने 'अंश' को अपनी ओर इलाही-प्यार द्वारा आकर्षित कर रहा है, दूसरी ओर जीव अपने केन्द्र – **परमेश्वर** की तरफ अनजाने, सहज-स्वभाव आकर्षित होता जा रहा है।

मू लालन सिउ प्रीति बनी ।।रहाउ।।
तोरी न तूटै छोरी न छूटै ऐसी माधो खिंच तनी ।। (पृ. 827)

इस इलाही प्रीत-डोरी का स्वरूप –

श्रद्धा-भावना
भय-भावना
प्रेम-स्वैपना
प्यार-आकांक्षा
सेवा-भाव
सिमरन
स्वयं को न्यौछावर करना है।

परन्तु अहम् के भ्रम-भुलाव में इन्सान अपने-आप को ही 'कर्ता-धर्ता' समझ कर अपनी तीक्ष्ण-बुद्धि द्वारा सयानप तथा चतुराईयों में गलतान रहता है। इस प्रकार हम एक दूसरे से वैर-विरोध, ईर्ष्या, द्वेष, लड़ाई-झगड़े, दुश्मनी मोल ले लेते हैं तथा फलस्वरूप डर, फिकर, शक तथा चिंता-चिता में जलते-सड़ते **दुख** भोगते हैं।

यदि छोटा बच्चा किसी कारण गुम हो जाये तथा बड़ा होकर अपने ही पिता के राज्य में नौकर बन जाये, तो उसके साथ अन्य नौकरों की भाँति व्यवहार होता है। परन्तु यदि किसी की प्रेरणा के फलस्वरूप उसे अपने पिता की पहचान हो जाये, वह पुनः **उस की शरण में चला जाये,** तब वह 'नौकर' से बदल कर **'पुत्र'** बन जाता है तथा अपने पिता की सम्पत्ति या विरासत का हकदार बन जाता है।

इसी प्रकार यदि हम पुनः अकाल-पुरुष रूपी **'इलाही-माता'** की सुखदायी गोद का स्नेह अनुभव करना चाहते हैं, उसकी दैवीय बख्शिशों के पात्र बनना चाहते हैं, **'गुझी भाहि जलै संसारा'** के सेंक से अपने आप को बचाना चाहते हैं, तब हमें गुरबाणी की निम्नलिखित पंक्तियों के प्रकाश में अपना जीवन **ढालना पड़ेगा।**

जउ सुख कउ चाहै सदा **सरनि राम की लेह** ॥ (पृ. 1427)

तजहु सिआनप सुरि जनहु **सिमरहु हरि हरि राइ** ॥
एक आस हरि मनि रखहु नानक दूखु भरमु भउ जाइ ॥ (पृ. 281)

मेरे मन **नामु नित नित लेह** ॥
जलत नाही अगनि सागर सूखु मनि तनि देह ॥ (पृ. 1006)

कोइ न किस ही संगि काहे गरबीऐ ॥
एकु नामु आधारु भउजलु तरबीऐ ॥ (पृ. 398)

रे मन **ओट लेहु हरि नामा** ॥
जा कै सिमरनि दुरमति नासै पावहि पदु निरबाना ॥ (पृ. 901)

जीअरे ओल्हा नाम का ॥
अवरु जि करन करावनो तिन महि भउ है जाम का ॥ (पृ. 211)

(समाप्त)